ग्रन्थ-संख्या—६६

प्रकाशक तथा विक्रेता
भारती-भण्डार
लीडर प्रेस,
प्रयाग

दूसरा संस्करण
सं० २००४
मूल्य १)

मुद्रक—
महादेव जोशी
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

परिचय

अरुणाचल आश्रम

अरुणाचल पहाड़ी के समीप, एक हरे-भरे प्राकृतिक वन में कुछ लोगों ने मिलकर एक स्वास्थ्य-निवास बसा लिया है। कई परिवारों ने उसमें छोटे-छोटे स्वच्छ घर बना लिये हैं। उन लोगों की जीवनयात्रा का अपना निराला ढङ्ग है, जो नागरिक और ग्रामीण जीवन की सन्धि है। उनका आदर्श है सरलता, स्वास्थ्य और सौन्दर्य्य।

कुञ्ज

आश्रम का मंत्री। एक सुदक्ष प्रबन्धकारक और उत्साही संचालक। सदा प्रसन्न रहनेवाला अधेड़ मनुष्य।

रसाल

एक भावुक कवि। प्रकृति से और मनुष्यों से तथा उनके आचार-व्यवहारों से अपनी कल्पना के लिये सामग्री जुटाने में व्यस्त सरल प्राणी।

वनलता

रसाल कवि की स्त्री। अपने पति की भावुकता से असन्तुष्ट। उसकी समस्त भावनाओं को अपनी ओर आकर्षित करने में व्यस्त रहती है।

मुकुल

उत्साही तर्कशील युवक! कुतूहल से उसका मन सदैव उत्सुकता-भरी प्रसन्नता में रहता है।

झाड़ूवाला

एक पढ़ा-लिखा किन्तु साधारण स्थिति का मनुष्य अपनी स्त्री की प्रेरणा से उस आश्रम में रहने लगता है; क्योंकि उस आश्रम में कोई साधारण काम करनेवाले को लज्जित होने की आवश्यकता नहीं। सभी कुछ-न-कुछ करते थे। उसकी स्त्री के हृदय में स्त्री-जन-सुलभ लालसायें होती हैं; किन्तु पूर्ति का कोई उपाय नहीं।

चँदुला

एक विज्ञापन करनेवाला विदूषक।

प्रेमलता

मुकुल की दूर के सम्बन्ध की बहन। एक कुतूहल से भरी कुमारी। उसके मन में प्रेम और जिज्ञासा भरी है।

आनन्द

एक स्वतंत्र प्रेम का प्रचारक, घुमक्कड़ और सुन्दर युवक। कु दिनों से आश्रम का अतिथि होकर मुकुल के यहाँ ठहरा है।

एक घूँट

(अरुणाचल-आश्रम का एक सघन कुञ्ज । श्रीफल, वट, आम, कदम्ब और मौलश्री के वड़े-वड़े वृक्षों की झुरमुट में प्रभात की धूप घुसने की चेष्टा कर रही है । उधर समीर के झोंके, पत्तियों और डालों को हिला-हिलाकर, जैसे किरणों के निर्विरोध प्रवेश में वाधा डाल रहे हैं । वसन्त के फूलों को भीनी-भीनी सुगन्ध, उस हरी-भरी छाया में कलोल कर रही है । वृक्षों के अन्तराल से गुञ्जारपूर्ण नभखण्ड की नीलिमा में जैसे पत्तियों का कलरव साकार दिखाई देता है !

मौलश्री के नीचे वेदी पर वनलता वैठी हुई, अपनी साड़ी के अंचल की वेल देख रही है । आश्रम में ही कहीं होते हुए संगीत को कभी सुन लेती है, कभी अनसुनी कर जाती है ।)

(नेपथ्य में गान)

खोल तू अब भी आँखें खोल !
जीवन-उदधि हिलोरें लेता उठतीं लहरें लोल ।
छवि की किरनों से खिल जा तू,
अमृत-झड़ी सुख से मिल जा तू ।

इस अनन्त स्वर से मिल जा तू वाणी में मधु घोल।
जिससे जाना जाता सब यह, उसे जानने का प्रयत्न! अह!
भूल अरे अपने को मत रह जकड़ा, बन्धन खोल।

खोल तू अब भी आँखें खोल।

(संगीत बंद होने पर कोकिल बोलने लगती है। वनलता अञ्चल छोड़कर खड़ी हो जाती है। उसकी तीखी आँखें जैसे कोकिल को खोजने लगती हैं। उसे न देखकर हताश-सी वनलता अपने-ही-आप कहने लगती है—)

कितनी टीस है, कितनी कसक है, कितनी प्यास है; निरन्तर पञ्चम की पुकार! कोकिल! तेरा गला जल उठता होगा। विश्व-भर से निचोड़कर यदि डाल सकती तेरे सूखे गले में एक घूँट। (कुछ सोचती है) किन्तु इस संगीत का.....क्या अर्थ है..... बन्धनों को खोल देना, एक विशृङ्खलता फैलाना परन्तु मेरे हृदय की पुकार क्या कह रही है। आकर्षण किसी को बाहुपाश में जकड़ने के लिये प्रेरित कर रहा है। इस संचित स्नेह से यदि किसी रूखे मन को चिकना कर सकती? (रसाल को आते हुए न देखकर) मेरी विश्व-यात्रा के संगी, मेरे स्वामी! तुम काल्पनिक विचारों के आनन्द में अपनी सच्ची संगिनी को भूल... (रसाल चुपचाप वनलता की आँखें बन्द कर लेता है, वह फिर कहने लगती है) कौन है? नीला, शीला, प्रेमलता! बोलती भी

नहीं ; अच्छा, मैं भी खूब छकाऊँगी, तुम लोग बड़े दुलार पर चढ़ गई हो न !

रसाल—(निश्वास लेकर हाथ हटाते हुए) इन लोगों के अतिरिक्त और कोई दूसरा तो हो ही नहीं सकता। इतने नाम लिये, किन्तु......किन्तु एक मेरा ही स्मरण न आया। क्यों वनलता ?

वनलता—(सिर पर साड़ी खींचती हुई) आप थे ? मैं नहीं जान.........

रसाल—(बात काटते हुए) जानोगी कैसे लता ! मैं भी जानने की, स्मरण होने की वस्तु होऊँ तब न ! अच्छा तो है, तुम्हारी विस्मृति भी मेरे लिये स्मरण करने की वस्तु होगी। (निश्वास लेकर) अच्छा, चलती हो आज मेरा व्याख्यान सुनने के लिये ?

वनलता—(आश्चर्य्य से) व्याख्यान ! तुम कब से देने लगे ? तुम तो कवि हो कवि, भला तुम व्याख्यान देना क्या जानो, और वह विषय कौन-सा होगा जिसपर तुम व्याख्यान दोगे ? घड़ी-दो-घड़ी बोल सकोगे ! छोटी-छोटी कल्पनाओं के उपासक ! सुकुमार सूक्तियों के संचालक ! तुम भला क्या व्याख्यान दोगे !

रसाल—तो मेरे इस भविष्य अपराध को तुम क्षमा न करोगी।

आनन्दजी के स्वागत में मुझे कुछ बोलने के लिये आश्रमवालों ने तंग कर दिया है। क्या करूँ वनलता !

वनलता—(मौलश्री की एक डाल पकड़कर झुकाती हुई) आनन्दजी का स्वागत ! अब होगा ! कहते क्या हो ! उन्हें आये तो कई दिन हो गये।

रसाल—(सिर पकड़कर) ओह ! मैं भूल गया था, स्वागत नहीं उनके परिचय-स्वरूप कुछ बोलना पड़ेगा।

वनलता—हाँ परिचय ! अच्छा मुझे तो बताइये यह आनन्दजी कौन हैं, क्यों आये हैं और कब ! नहीं-नहीं, कहाँ रहते हैं ?

रसाल—मनुष्य हैं, उनका कुछ निज का सन्देश है; उसी का प्रचार करते हैं। कोई निश्चित निवास नहीं। (जैसे कुछ स्मरण करता हुआ) तुम भी चलो न ! संगीत भी होगा। आनन्दजी अरुणाचल पहाड़ी की तलहटी में घूमने गये हैं; यदि नदी की ओर भी चले गये हों तो कुछ विलम्ब लगेगा, नहीं तो अब आते ही होंगे। तो मैं चलता हूँ।

(रसाल जाने लगता है। वनलता चुप रहती है। फिर रसाल के कुछ दूर जाने पर उसे बुलाती है)

वनलता—सुनो तो !

रसाल—(लौटते हुए) क्या ?

वनलता—वह अभी-अभी जो संगीत हो रहा था (कुछ सोचकर) मुझे उसका पद स्मरण नहीं हो रहा है; वह......

रसाल—मेरी 'एक घूँट' नाम की कविता मधुमालती गाती रही होगी।

वनलता—क्या नाम बताया—'एक घूँट'? उहूँ! कोई दूसरा नाम होगा। तुम भूल रहे हो; वैसा स्वरविन्यास एक घूँट नाम की कविता में हो ही नहीं सकता।

रसाल—तब ठीक है। कोई दूसरी कविता रही होगी। तो मैं जाऊँ न!

वनलता—(स्मरण करके) ओहो, उसमें न जकड़े रहने के लिये, बन्धन खोलने के लिये, और भी क्या-क्या ऐसी ही बातें थीं। वह किसकी कविता है?

रसाल—(दूसरी ओर देखकर) तो, तो वह मेरी—हाँ-हाँ -मेरी ही कविता थी।

वनलता—(त्योरी चढ़ाकर, अच्छा तो आप बन्धन तोड़ने चेष्टा में हैं आज-कल! क्यों, कौन बन्धन खल रहा है?

रसाल—(हँसने की चेष्टा करता हुआ) यह अच्छी रही! तु लता! यह क्या पुराने ढङ्ग की साड़ी तुमने पहन ली है? तो समय के अनुकूल नहीं; और मैं तो कहूँगा, सुरुचि के ाह प्रतिकूल है।

वनलता—समय के अनुकूल बनने की मेरी बान नहीं, और सुरुचि के सम्बंध में मेरा निज का विचार है। उसमें किसी दूसरे की सम्मति की मुझे आवश्यकता नहीं।

रसाल—उस दिन जो नई साड़ी मैं ले आया था उसे पहन आओ न !

वनलता—अच्छा-अच्छा, तुम जाते कहाँ हो ? व्याख्यान कहाँ होगा ? ए कविजी, सुनूँ भी।

रसाल—यही तो मैं पूछने जा रहा था।

(वनलता दाहिने हाथ की तर्जनी से अपना अधर दबाये, बायें हाथ से दहनी कुहनी पकड़े हँसने लगती है और रसाल उसकी मुद्रा साग्रह देखने लगता है, फिर चला जाता है।)

वनलता—(दाँतों से ओंठ चबाते हुए) हूँ ! निरीह, भावुक प्राणी ! जंगली पक्षियों के बोल, फूलों की हँसी और नदी के कलनाद का अर्थ समझ लेते हैं। परन्तु मेरे आर्तनाद को कभी समझने की चेष्टा भी नहीं करते। और मैंने ही......

(दूर से कुछ लोगों के बातचीत करते हुए आने का शब्द सुनाई पड़ता है। वनलता चुपचाप बैठ जाती है। प्रेमलता और आनन्द का बात करते हुए प्रवेश। पीछे-पीछे और भी कई स्त्री-पुरुषों का आपस में संकेत से बातें करते हुए आना। वनलता जैसे उस ओर ध्यान ही नहीं देती।)

आनन्द—(एक ढीला रेशमी कुरता पहने हुए है, जिसकी बाहें उसे बार-बार चढ़ानी पड़ती हैं, बीच-बीच में चद्दर भी सम्हाल लेता है। पान को रूमाल से पोंछते हुए प्रेमलता की ओर गहरी दृष्टि से देखकर) जैसे उजली धूप सबको हँसाती हुई

आलोक फैला देती है, जैसे उल्लास की मुक्त प्रेरणा फूलों की पंखड़ियों को गद्गद कर देती है, जैसे सुरभि का शीतल झोंका सबका आलिङ्गन करने के लिये विह्वल रहता है, वैसे ही जीवन की निरन्तर परिस्थिति होनी चाहिये।

प्रेमलता—किन्तु, जीवन की झंझटें, आकांक्षाएँ, ऐसा अवसर आने दें तब न! बीच-बीच में ऐसा अवसर आ जाने पर भी चिरपरिचित निष्ठुर विचार गुर्राने लगते हैं। तब!

आनन्द—उन्हें पुचकार दो, सहला दो; तब भी न मानें, किसी एक का पक्ष न लो। बहुत सम्भव है कि वे आपस में लड़ जायँ और तब तुम तटस्थ दर्शकमात्र बन जाओ और खिलखिलाकर हँसते हुए वह दृश्य देख सको। देख सकोगे न!

प्रेमलता—असम्भव! विचारों का आक्रमण तो सीधे मुझी पर होता है। फिर वे परस्पर कैसे लड़ने लगें? (स्वगत) अहा, कितना मधुर यह प्रभात है! यह मेरा मन जो गुदी-गुदी का अनुभव कर रहा है, उसका संघर्ष किससे करा दूँ।

(मुकुल भवों को चढ़ाकर अपनी एक हथेली पर तर्जनी से प्रहार करता है, जैसे उसकी समझ में प्रेमलता की बात बहुत सोच-विचारकर कही गई हो। आनन्द दोनों को देखता है, फिर उसकी दृष्टि वनलता की ओर चली जाती है।)

आनन्द—(सँभालते हुए) जब तुम्हारे हृदय में एक कटु विचार आता है, उसके पहले से क्या कोई मधुर भाव प्रस्तुत नहीं

रहता ? जिससे तुलना करके तुम कटुता का अनुभव करती हो।

प्रेमलता—हाँ, ऐसा ही तो समझ में आता है।

आनन्द—तो इससे स्पष्ट हो जाता है कि पवित्र हृदय-मन्दिर में दो—कटु और मधुर—भावों का द्वन्द्व चला करता है, और उन्हीं में से एक दूसरे पर आतंक जमा लेता है।

प्रेमलता—लेता है ; किन्तु, यह बात मेरी समझ में...... .

आनन्द—(हँसकर) न आई होगी किन्तु तुम उस द्वन्द्व के प्रभाव से मुक्त हो सकती हो। मान लो कि तुम किसी से स्नेह करती हो (ठहरकर प्रेमलता की ओर गूढ़ दृष्टि से देखकर) और तुम्हारे हृदय में इसे सुचित करने......व्यक्त करने के लिये इतनी व्याकुलता.........

प्रेमलता—ठहरिये तो, मैं प्यार करती हूँ कि नहीं, पहले इसपर भी मुझे दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिये।

आनन्द—(विरक्ति प्रगट करता हुआ) उँह, दृढ़ निश्चय को बीच में लाकर तुमने मेरी विचार-धारा दूसरी ओर बहा दी। दृढ़ निश्चय ! एक बन्धन है। प्रेम की स्वतंत्र आत्मा को बन्दीगृह में न डालो। इसमें उसका स्वास्थ्य, सौन्दर्य्य और सरलता सब नष्ट हो जायगी।

प्रेमलता—एँ ! (और भी कुछ चकित आश्चर्य से) हैं !

आनन्द—हाँ हाँ, उस नियमबद्ध प्रेम-व्यापार का बड़ा ही स्वार्थपूर्ण विकृत रूप होगा। जीवन का लक्ष्य भ्रष्ट हो जायगा।

प्रेमलता—(आश्चर्य्य से) और वह लक्ष्य क्या है ?

आनन्द—विश्व-चेतना के आकार धारण करने की चेष्टा का नाम 'जीवन' है। जीवन का लक्ष्य 'सौन्दर्य्य' है; क्योंकि आनन्दमयी प्रेरणा जो उस चेष्टा या प्रयत्न का मूल रहस्य है, स्वस्थ—अपने आत्मभाव में, निर्विशेष रूप से—रहने पर सफल हो सकती है। दृढ़ निश्चय कर लेने पर उसकी सरलता न रहेगी, अपने मोह-मूलक अधिकार के लिये वह झगड़ेगी।

प्रेमलता—किन्तु अभी-अभी आपने नदी-तट पर जाल की कड़ियों को आपस में लड़ाते हुए मछुओं की बातें सुनी हैं। वे न-जाने.........

आनन्द—सुनी है। आनन्द के सम्बन्ध में पहले एक बात मेरी सुन लो। आनन्द का अन्तरङ्ग सरलता है और बहिरंग सौन्दर्य्य है, इसी में वह स्वस्थ रहता है।

प्रेमलता—किन्तु आपकी ये बातें समझ में नहीं आतीं।

आनन्द—(हँसकर) तो इसमें मेरा अपराध नहीं। प्रायः न समझने के कारण मेरे इस कथन का अर्थ उलटा ही लगाया जायगा, या तो पागल का प्रलाप समझा जायगा। किन्तु करूँ क्या, बात तो जैसी है वैसी ही कही जायगी न! उन मछुओं को

सरलता और सौन्दर्य दोनों का ज्ञान नहीं। फिर आनन्द के नाम पर वे दुख का नाम क्यों लें ?

प्रेमलता—(उदास होकर) यदि हम लोगों की दृष्टि में उनके यहाँ सौन्दर्य का अभाव हो, तो भी उनके पास सरलता नहीं है, मैं ऐसा नहीं मान सकती।

आनन्द—तुम्हारा न मानने का अधिकार मैं मानता हूँ; किंतु वे अपने भीतर ज्ञाता बनने का निश्चय करके, अपने स्वार्थों के लिये दृढ़ अधिकार प्रकट करते हुए, अपनी सरलता की हत्या कर रहे थे और सौन्दर्य को मलिन बना रहे थे। काल्पनिक दुःखों को ठोस मानकर......

मुकुल—(बात काटते हुए) ठहरिये तो, क्या फिर 'दुःख' नाम की कोई वस्तु है नहीं ?

आनन्द—होगा कहीं! हम लोग उसे खोज निकालने का प्रयत्न क्यों करें ? अपने काल्पनिक अभाव, शोक, ग्लानि और दुःख के काजल-आँखों के आँसू में घोलकर सृष्टि के सुन्दर कपोलों को क्यों कलुषित करें ? मैं उन दार्शनिकों से मतभेद रखता हूँ जो यह कहते आये हैं कि संसार दुःखमय है और दुःख के नाश का उपाय सोचना ही पुरुषार्थ है।

(वनलता चुपचाप तीव्र दृष्टि से दोनों को देखती हुई अपने बाल सँवारने लगती है और प्रेमलता आनन्द को देखती हुई बारं-बार सोचने लगती है।)

प्रेमलता—(स्वगत) अहा ! कितना सुन्दर जीवन हो, यदि मनुष्य को इस बात का विश्वास हो जाय कि मानव-जीवन की मूल सत्ता में आनन्द है । आनन्द ! आह ! इनकी बातों में कितनी प्रफुल्लता है ! हृदय को जैसे अपनी भूली हुई गीत स्मरण हो रही है । (वह प्रसन्न नेत्रों से आनन्द को देखती हुई कह उठती है) और !

आनन्द—और दुःख की उपासना करते हुए एक दूसरे के दुःख से दुखी होकर परम्परागत सहानुभूति—नहीं-नहीं, यह शब्द उपयुक्त नहीं; हाँ—सहरोदन करना मूर्खता है । प्रसन्नता की हत्या का रक्त पानी बन जाता है । पतला, शीतल ! ऐसे सम्वेदनाएँ संसार में उपकार से अधिक अपकार ही करती हैं ।

प्रेमलता—(स्वगत सोचने लगती है) सहानुभूति भी अपराध ? अरे यह कितना निर्दय ! आनन्द ! आनन्द ! यह तुम क्या कह रहे हो ? इस स्वच्छन्द प्रेम से या तुमसे क्या आशा !

मुकुल—फिर संसार में इतना हाहाकार !

आनन्द—उँह, विश्व विकासपूर्ण है; है न ? तब विश्व की कामना का मूल रहस्य 'आनन्द' ही है, अन्यथा वह 'विकास' न होकर दूसरा ही कुछ होता ।

मुकुल—और संसार में जो एक दूसरे को कष्ट पहुँचाते हैं, झगड़ते हैं !

आनन्द—दुःख के उपासक उसकी प्रतिमा बनाकर पूजा करने के लिये द्वेष, कलह और उत्पीड़न आदि सामग्री जुटाते रहते हैं। तुम्हें हँसी के हल्के धक्के से उन्हें टाल देना चाहिये।

मुकुल—महोदय, आपका यह हल्के जोगियारंग का कुरता जैसे आपके सुन्दर शरीर से अभिन्न होकर हम लोगों की आँखों में भ्रम उत्पन्न कर देता है, वैसे ही आपको दुःख के झलमले अंचल में सिसकते हुए संसार की पीड़ा का अनुभव स्पष्ट नहीं हो पाता। आपको क्या मालूम कि बुद्धू के घर की काली-कलूटी हाँडी भी कई दिन से उपवास कर रही है। झुन्नू मूँगफलीवाले का एक रुपये की पूँजी का खोमचा लड़कों ने उछल-कूदकर गिरा भी दिया और लूटकर खा भी गये, उसके घर पर सात दिन की उपवासी रुग्ण बालिका मुनक्के की आशा में पलक पसारे बैठी होगी या खाट पर पड़ी होगी।

प्रेमलता—(आनन्द की ओर देखकर) क्यों ?

आनन्द—ठीक वही बात ! यही तो होना चाहिये। स्वच्छन्द प्रेम को जकड़कर बाँध रखने का, प्रेम की परिधि संकुचित बनाने का यही फल है, यही परिणाम है। (मुस्कराने लगता है)।

मुकुल—तब क्या सामाजिकता का मूल उद्गम—वैवाहिक प्रथा तोड़ देनी चाहिये ? तब तो मातृ-पितृ दायित्व छोड़कर उच्छृंखल जीवन बिताने की घोषणा होगी। परस्पर सुख-दुःख में

गला बाँधकर एक दूसरे पर विश्वास करते हुए, सन्तुष्ट दो प्राणियों की आशाजनक परिस्थिति क्या छोड़ देने की वस्तु है ? फिर......

प्रेमलता—(स्वगत) यह कितनी निराशामयी शून्य कल्पना है—(आनन्द को देखने लगती है)।

आनन्द—(हताश होने की मुद्रा बनाकर) ओह ! मनुष्य कभी न समझेगा। अपने दुःखों से भयभीत कंगाल दूसरों के दुःख में श्रद्धावान बन जाता है।

मुकुल—मैंने देखा है कि मनुष्य एक ओर तो दूसरे से ठगा जाता है, फिर भी दूसरे से कुछ ठग लेने के लिये सावधान और कुशल बनने का अभिनय करता रहता है।

प्रेमलता—ऐसा भी होता होगा !

आनन्द—यह मोह की भूख......

वनलता—(पास आकर) और पेट को ही भूख-प्यास तो मानव-जीवन में नहीं होती। हृदय को—(छाती पर हाथ रखकर) कभी इसको—भी टटोलकर देखा है। इसकी भूख-प्यास का भी कभी अनुभव किया है ? (आनन्द कौतुक से वनलता की ओर देखने लगता है। आश्रम के मन्त्री कुंज के साथ रसाल का प्रवेश)

आनन्द—(मुस्कराकर) देवि, तुम्हारा तो विवाहित जीवन

है न ! तब भी हृदय भूखा और प्यासा ! इसी से मैं स्वच्छन्द प्रेम का पक्षपाती हूँ।

वनलता—वही तो मैं समझ नहीं पाती, प्रतिकूलताएँ.... (कहते-कहते रसाल को देखकर रुक जाती है, फिर प्रेमलता को देखकर) प्रेमलता ! तुमने आज प्रश्न करके हम लोगों के अतिथि श्रीआनन्दजी को अधिक समय तक थका दिया है। अच्छा होता कि कोई गान सुनाकर इन शुष्क तर्कों से उत्पन्न हुई हम लोगों की ग्लानि को दूर करतीं।

प्रेमलता—(सिर झुकाकर प्रसन्न होती हुई) अच्छा, सुनिये। (सब प्रसन्नता प्रकट करते हुए एक दूसरे को देखते हैं)

प्रेमलता—(गाती है)

जीवन-वन में उजियाली है।
यह किरनों की कोमल धारा—
बहती ले अनुराग तुम्हारा—
फिर भी प्यासा हृदय हमारा—
व्यथा घूमती मतवाली है।

हरित दलों के अन्तराल से—
बचता-सा इस सघन जाल से।
यह समीर किस कुसुम-बाल से—
माँग रहा मधु की प्याली है।

एक घूँट का प्यासा जीवन—
निरख रहा सबको भर लोचन।
कौन छिपाये है उसका धन—
कहाँ सजल वह हरियाली है।

(गान समाप्त होने पर एक प्रकार का सन्नाटा हो जाता है। संगीत की प्रतिध्वनि उस कुञ्ज में अभी भी जैसे सब लोगों को मुग्ध किये है। वनलता सब लोगों से अलग कुंज से धीरे-धीरे कहती है)

वनलता—कुछ देखा आपने!

कुंज—क्या!

वनलता—हमारे आश्रम में एक प्रेमलता ही तो कुमारी है। और यह आनन्दजी भी कुमार ही हैं।

कुंज—तो इससे क्या!

वनलता—इससे! हाँ, यही तो देखना है कि क्या होता है। होगा कुछ अवश्य। देखूँ तो मस्तिष्क विजयी होता है कि हृदय! आपको.........

कुंज—(चिन्तित भाव से) मुझे तो इसमें......जाने भी, वह देखो रसालजी कुछ कहना चाहते हैं क्या? मैं चलूँ।

(दोनों आनन्दजी के पास जाकर खड़े हो जाते हैं।)

कुंज मंत्री—महोदय ! मेरे मित्र श्रीरसालजी आपके परिचय-स्वरूप एक भाषण देना चाहते हैं। यदि आपकी आज्ञा हो तो आपके व्याख्यान के पहले ही—

आनन्द—(जैसे घबराकर) क्षमा कीजिये मैं तो व्याख्यान देना नहीं चाहता ; परन्तु श्रीरसालजी की रसीली वाणी अवश्य सुनूँगा। आप लोगों ने तो मेरा वक्तव्य सुन ही लिया। मैं वक्ता नहीं हूँ। जैसे सब लोग बातचीत करते हैं, कहते हैं, सुनते हैं, ठीक उसी तरह मैंने भी आप लोगों से वाग्विलास किया है। (रसाल को देखकर सविनय) हाँ, तो श्रीमान् रसालजी !

प्रेमलता—किन्तु बैठने का प्रबन्ध तो कर लिया जाय !

वनलता—आनन्दजी इस वेदी पर बैठ जायँ और हम लोग इन वृक्षों की ठंडी छाया में बड़ी प्रसन्नता से यह गोष्ठी कर लेंगे।

आनन्द—हाँ-हाँ, ठीक तो है।

(सब लोग बैठ जाते हैं और वनलता एक वृक्ष से टिककर खड़ी हो जाती है। रसाल, आनन्द के पास खड़ा होकर, व्याख्यान देने की चेष्टा करता है। सब मुस्कराते हैं। फिर वह सम्हलकर कहने लगता है।)

रसाल—व्यक्ति का परिचय तो उसकी वाणी, उसके व्यवहार से वस्तुतः स्वयं हो जाता है ; किन्तु यह प्रथा-सी चल पड़ी है कि........

वनलता—(सस्मित, बीच में ही बात काटकर) कि जो उस

व्यक्ति के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानते उन्हीं के सिर पर परिचय देने का भार लाद दिया जाता है।

(सब लोग वनलता को असन्तुष्ट होकर देखने लगते हैं, और वह अपनी स्वाभाविक हँसी से सबका उत्तर देती है और कहती है)—अस्तु, कविजी, आगे फिर........(सब हँस पड़ते हैं)

रसाल—अच्छा, मैं भी श्रीआनन्दजी का परिचय न देकर आपके सन्देश के सम्बन्ध में दो-एक बातें कहना चाहता हूँ; क्योंकि आपका सन्देश हमारे आश्रम के लिए एक विशेष महत्त्व रखता है। आपका कहना है कि...(रुककर सोचने लगता है)

मुकुल—कहिये कहिये।

रसाल—कि अरुणाचल-आश्रम इस देश की एक बड़ी सुन्दर संस्था है, इसका उद्देश बड़ा ही स्फूर्तिदायक है। इसके आदर्श वाक्य, जिन्हें आप लोगों ने स्थान-स्थान पर लगा रक्खे हैं, बड़े ही उत्कृष्ट हैं; किन्तु उन तीनों में एक और जोड़ देने से आनन्दजी का सन्देश पूर्ण हो जाता है—

स्वास्थ्य, सरलता और सौन्दर्य्य में प्रेम को भी मिला देने से इन तीनों की प्राण-प्रतिष्ठा हो जायगी। इन विभूतियों का एकत्र होना विश्व के लिये आनन्द का उत्स खुल जाना है।

प्रेमलता—किन्तु महोदय ! मैं आपके विरुद्ध आप ही की एक कविता गाकर सुनाना चाहती हूँ ।

मुकुल—ठहरो प्रेमलता !

वनलता—वाह ! गाने न दीजिये । अब तो मैं समझती हूँ कि कविजी को जो कुछ कहना था कह चुके ।

(सब लोग एक दूसरे का मुँह देखने लगते हैं, आनन्द सबको विचार-विमूढ़-सा देखकर हँसने लगता है)

प्रेमलता—तो फिर क्या आज्ञा है ?

आनन्द—हाँ हाँ, बड़ी प्रसन्नता से ; हम लोगों के तर्कों, विचारों और विवादों से अधिक संगीत से आनन्द की उपलब्धि होती है ।

प्रेमलता—किन्तु यह दुःख का गान है । तब भी मैं गाती हूँ ।

(गान)

जलधर की माला
घुमड़ रही जीवन-घाटी पर—जलधर की माला ।
—आशा-लतिका कँपती थरथर—
गिरे कामना-कुंज हहरकर
—अंचल में हैं उपल रही भर—यह करुणा-बाला ।
यौवन ले आलोक किरन की
डूब रही अभिलाषा मन की
क्रन्दन-चुम्बित निठुर निधन की—बनती वनमाला ।

अन्धकार गिरि-शिखर चूमती—
असफलता की लहर घूमती
क्षणिकसुखों पर सतत झूमती—शोकमयी ज्वाला।

(संगीत समाप्त होने पर एक दूसरे का मुँह बड़ी गंभीरता की मुद्रा से देखने लगते हैं)

आनन्द—यह स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त हानिकारक है। ऐसी भावनाएँ हृदय को कायर बनाती हैं। रसालजी, यह आपकी ही कविता है! मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि........

रसाल—मैं स्वीकार करता हूँ कि यह मेरी कल्पना की दुर्बलता है। मैं इससे बचने का प्रयत्न करूँगा। (सब लोगों की ओर देखकर) और आप लोग भी अनिश्चित जीवन की निराशा के गान भूल जाइये। प्रेम का प्रचार करके, परस्पर प्यार करके, दुःखमय विचारों को दूर भगाइये।

मुकुल—किन्तु प्रेम में क्या दुःख नहीं है?

रसाल—होता है, किन्तु वह दुःख मोह का है, जिसे प्रायः लोग प्रेम के सिर मढ़ देते हैं। आपका प्रेम, आनन्दजी के सिद्धान्त पर, सबसे सम-भाव का होना चाहिये। भाई, पिता, माता और स्त्री को भी इन विशेष उपाधियों से मुक्त होकर प्यार करना सीखिये। सीखिये कि हम मानवता के नाते स्त्री को प्यार करते हैं। मानवता के नाम........(सब लोग वनलता की ओर देख-

व्यंग्य से हँसने लगते हैं। रसाल जैसे अपनी भूल समझता हुआ चुप हो जाता है)।

वनलता—(भँवें चढ़ाकर तीखेपन से) हाँ, मानवता के नाम पर, बात तो बड़ी अच्छी है। किन्तु मानवता आदान-प्रदान चाहती है, विशेष स्वार्थों के साथ। फिर क्यों न झरनों, चाँदनी रातों, कुंज और वनलताओं को ही प्यार किया जाय—जिनकी किसी से कुछ माँग नहीं। (ठहर कर) प्रेम की उपासना का एक केन्द्र होना चाहिए, एक अन्तरङ्ग सम्भ्य होना चाहिए।

प्रेमलता—मानवता के नाम पर प्रेम की भीख देने में प्रत्येक व्यक्ति को बडा गर्व होगा। उसमें समर्पण का भाव कहाँ ?

कुञ्ज—सो तो ठीक है, किन्तु अन्तरङ्ग साम्यवाली बात पर मैं भी एक बात कहना चाहता हूँ। अभी कल ही मैंने 'मधुरा' में एक टिप्पणी देखी थी और उसके साथ कुछ चित्र भी थे, जिनमें दो व्यक्तियों की आकृति का साम्य था। एक वैज्ञानिक कहता है कि प्रकृति जोड़े उत्पन्न करती है।

वनलता—(शीघ्रता से) और उसका उद्देश दो को परस्पर प्यार करने का संकेत करना है। क्यों, यही न ? किन्तु प्यार करने के लिये हृदय का साम्य चाहिये, अन्तर की समता चाहिए। वह कहाँ मिलती है ? दो समान अन्तःकरणों का चित्र भी तुमने देखा है ? सो भी—

कुञ्ज—एक स्त्री और एक पुरुष का, यही न ! (मुँह

बनाकर) ऐसा न देखने का अपराध करने के लिये मैं क्षमा माँगता हूँ।

(सब हँसने लगते हैं। ठीक उसी समय एक चँदुला, गले में विज्ञापन लटकाये, आता है। उसकी चँदुली खोपड़ी पर बड़े अक्षरों में लिखा है 'एक घूँट' और विज्ञापन में लिखा है 'पीते ही सौन्दर्य चमकने लगेगा। स्वास्थ्य के लिये सरलता से मिला हुआ सुअवसर हाथ से न जाने दीजिये। सुधारस पीजिये एक घूँट'—

कुञ्ज—(उसे देखकर आश्चर्य से) हमारे आश्रम के आदर्श शब्द ! सरलता, स्वास्थ्य और सौन्दर्य। वाह !

रसाल—और मेरी कविता का शीर्षक 'एक घूँट !'

चँदुला—(दाँत निकालकर) तब तो मैं भी आप ही लोगों की सेवा कर रहा हूँ। है न ! आप लोग भी मेरी सहायता कीजिये। इसीलिये मैं यहाँ...

रसाल—(उसे रोककर) किन्तु तुमने अपनी खोपड़ी पर यह क्या भद्दापन अंकित कर लिया है ?

चँदुला—(सिर झुकाकर दिखाते हुए महोदय ! प्रायः लोगों की खोपड़ी में ऐसा ही भद्दापन भरा रहता है। मैं तो उसे निकाल-बाहर करने का प्रयत्न कर रहा हूँ। आपको इसमें सहमत होना चाहिये। यदि इस समय आप लोगों की कोई सभा, गोष्ठी या

ऐसी ही कोई समिति इत्यादि हो रही हो तो, गिन लीजिये, मेरे पक्ष में बहुमत होगा। होगा न ?

रसाल—किन्तु यह अत्यन्त अ-सुन्दर है।

चँदुला—किन्तु मैं ऐसा करने के लिये बाध्य था। महोदय, और करता ही क्या ?

रसाल—क्या ?

चँदुला—मैंने खिड़की से एक दिन झाँककर देखा एक गोरा-गोरा प्रभावशाली मुख उसके साथ दो-तीन मनुष्य सीढ़ी और बड़े-बड़े कागज लिये मेरे मकान पर चढ़ाई कर रहे हैं। मैंने चिल्लाकर कहा—हँ-हँ-हँ-हँ, यह क्या !

रसाल—तब क्या हुआ ?

चँदुला—उसने कहा, विज्ञापन चिपकेगा। मैंने बिगड़कर कहा—तुम उसपर लगा हुआ विज्ञापन स्वयं नहीं पढ़ रहे हो, तब तुम्हारा विज्ञापन दूसरा कौन पढ़ेगा। वह मेरी दीवार पर लिखा हुआ विज्ञापन पढ़ने लगा—'यहाँ विज्ञापन चिपकाना मना है।' मैं मुँह विचकाकर उसकी मूर्खता पर हँसने लगा था कि उसने डाँटकर कहा—तुम नीचे आओ।

रसाल—और तुम नीचे उतर आये, क्यों ?

चँदुला—उतरना ही पड़ा। मैं चँदुला जो था। वह मेरा सिर सहलाकर बोला—अरे तुम अपनी सब जगह बेकार रखते हो। इतनी बड़ी दीवार ! उसपर विज्ञापन लगाना मना है ! और इतना बढ़िया

प्रमुख स्थान जैसा किसी अच्छे पत्र में मिलना असम्भव है। तुम्हारी खोपड़ी खाली! आश्चर्य! तुम अपनी मूर्खता से हानि उठा रहे हो। तुमको नहीं मालूम कि नंगी खोपड़ी पर प्रेत लोग चपत लगाते हैं।

वनलता—तो उसने भी चपत लगाया होगा?

चँदुला—नहीं-नहीं, (मुँह बनाकर) वह बड़ा भलामानुस था। उसने कहा—तुमलोग उपयोगिता का कुछ अर्थ नहीं जानते। मैं तुम्हें प्रति दिन एक सोने का सिक्का दूँगा और तब मेरा विज्ञापन तुम्हारी चिकनी खोपड़ी पर खूब सजेगा। सोच लो।

रसाल—और तुम सोचने लगे?

चँदुला—हाँ, किन्तु मैंने सोचने का अवसर कहाँ पाया? ऊपर से वह बोलीं।

रसाल—ऊपर से कौन?

चँदुला—वही-वही, (दाँत से जीभ दबाकर) जिनका ना... धर्मशास्त्र की आज्ञानुसार लिया ही नहीं जा सकता।

रसाल—कौन, तुम्हारी स्त्री?

चँदुला—(हँसकर) जी-ई-ई, उन्होंने तीखे स्वर से कहा—'चुप क्यों हो, कह दो कि हाँ! अरे पन्द्रह दिनों में एक बढ़िया हार! बड़े मूर्ख हो तुम।' मैंने देखा कि वह विज्ञापनवाला हँस रहा है। मैंने निश्चय कर लिया कि मैं मूर्ख तो नहीं-ही नूँगा, और चाहे कुछ भी बन जाऊँ। तुरन्त कह उठा—हाँ।

-ना नहीं निकला ; क्योंकि जिसकी कृपा से खोपड़ी चँदुली ो गई थी उसी का डर गला दबाये था।

रसाल—(निश्वास लेकर वनलता की ओर देखता हुआ) तब तुमने स्वीकार कर लिया ?

चँदुला—हाँ, और लोगों के आनन्द के लिये।

आनन्द—(आश्चर्य्य से) आनन्द के लिये ?

चँदुला—जी, मुझे देखकर सब लोग प्रसन्न होते हैं। सब तो होते हैं, एक आप ही का मुँह बिचका हुआ देख रहा हूँ। मुझे देखकर हँसिये तो ! और यह भी कह देना चाहता हूँ कि उसी विज्ञापनदाता ने यह गुरु भार भी अपने ऊपर लिया है—बीमा कर लिया है कि कोई मुझे चपत नहीं लगा सकेगा। आप लोग समझ गये। यह मेरी कथा है।

आनन्द—किन्तु आनन्द के लिये तुमने यह सब किया ! कैसे आश्चर्य की बात है ? (वनलता को देखकर) यह सब स्वच्छन्द प्रेम को सीमित करने का कुफल है, देखा न ?

चँदुला—आश्चर्य्य क्यों होता है महोदय ! मान लिया कि आपको मेरा विज्ञापन देखकर आनन्द नहीं मिला, न मिले ; किन्तु इन्हीं पन्द्रह दिनों में जब मेरी श्रीमती हार पहनकर अपने मोटे-मोटे अधरों की पगडंडी पर हँसी को धीरे-धीरे दौड़ावेंगी और मेरी चँदुली खोपड़ी पर हल्की-सी चपत लगावेंगी तब क्या मैं

आँख मूँदकर आनन्द न लूँगा—आप ही कहिये ? आपने ब्याह किया है तो !

आनन्द—(डाँटते हुए) मैंने ब्याह नहीं किया है; किन्तु इतना मैं कह सकता हूँ कि आनन्द को इस गड़बड़ झाला में घोटना ठीक नहीं। अन्तरात्मा के उस प्रसन्न-गम्भीर उल्लास को इस तरह कदर्थित करना अपराध है।

चँदुला—कदापि नहीं, एक घूँट सुधारस पान करके देखिये तो, वही भीतर की सुन्दर प्रेरणा आपकी आँखों में, कपोलों पर, सब जगह, चाँदनी-सी खिल जायगी। और सम्भवतः आप ब्याह करने के लिये.........

रसाल—(डाँटकर) अच्छा बस, अब जाइए।

चँदुला—(झुककर) जाता हूँ। किन्तु इस सेवक को न भूलियेगा। सुधारस भेजने के लिये शीघ्र ही पत्र लिखियेगा। मैं प्रतीक्षा करूँगा।

(जाता है)

(कुछ लोग गम्भीर होकर निश्वास लेते हैं जैसे प्राण बचा हो, और कुछ हँसने लगते हैं)

रसाल—(निश्वास लेकर) ओह ! कितना पतन है ? कितना बीभत्स ! कितना निर्दय ! मानवता ! तू कहाँ है ?

आनन्द—आनन्द में, मेरे कवि-मित्र ! यह जो दुःखवाद का चड़ा सब धर्मों ने, दार्शनिकों ने गाया है उसका रहस्य क्या

है ? डर उत्पन्न करना ! विभीषिका फैलाना ! जिससे स्निग्ध गम्भीर जल में, अबोधगति से तैरनेवाली मछली-सी विश्वसागर की मानवता चारों ओर जाल-ही-जाल देखे, उसे जल न दिखाई पड़े; वह डरी हुई, संकुचित-सी, अपने लिये सदैव कोई रक्षा की जगह खोजती रहे। सब से भयभीत, सब से सशंक !

रसाल—अब मेरी समझ में आया !

वनलता—क्या !

रसाल—यही कि हम लोगों को शोक-संगीतों से अपना पीछा छुड़ा लेना चाहिये। आनन्दातिरेक से आत्मा का साकारता ग्रहण करना ही जीवन है। उसे सफल बनाने के लिये स्वच्छन्द प्रेम करना सीखना-सिखाना होगा।

वनलता—(आश्चर्य से) सीखना होगा और सिखाना होगा ? क्या उसके लिये कोई पाठशाला खुलनी चाहिये ?

आनन्द—नहीं पाठशाला की कोई आवश्यकता इस शिक्षा के लिये नहीं है। हम लोग वस्तु या व्यक्ति विशेष से मोह करके और लोगों से द्वेष करना सीखते हैं न ! उसे छोड़ देने ही से सब काम चल जायगा।

प्रेमलता—तो फिर हम लोग किसी प्रिय वस्तु पर अधिक आकर्षित न हों—आपका यही तात्पर्य है क्या !

(आनन्द कुछ बोलने की चेष्टा करता है कि आश्रम का

झाड़ूवाला और उसकी स्त्री कलह करती हुई आ जाती है। सब लोग उन दोनों की बातें सुनने लगते हैं)

झाड़ूवाला—(हाथ के झाड़ू को हिलाकर) तो तेरे लिये मैं दूसरे दिन उजली साड़ी कहाँ से लाऊँ ? और कहाँ से उठा लाऊँ सत्ताइस रुपये का सितार ! (सब लोगों की ओर देखकर) आप लोगों ने यह अच्छा रोग फैलाया।

मन्त्री—क्या है जी !

झाड़ूवाला—(सिसकती हुई अपनी स्त्री को कुछ कहने से रोककर) आप लोगों ने स्वास्थ्य, सरलता और सौन्दर्य का ठेका ले लिया है; परन्तु मैं कहूँगा कि इन तीनों का गला घोंटकर आप लोगों ने इन्हें बन्दी बनाकर सड़ा डाला है, सड़ा, इन्हीं आश्रम की दीवारों के भीतर ! उनकी अन्त्येष्टि कब होगी ?

रसाल—तुम क्या बक रहे हो ?

झाड़ूवाला—हाँ, बक रहा हूँ ! यह बकने का रोग उसी दिन से लगा जिस दिन मैंने अपनी स्त्री से इन विषभरी बातों को सुना ! और सुना अरुणाचल-आश्रम नाम के स्वास्थ्य-निवास का यश। स्वास्थ्य, सरलता सौन्दर्य के त्रिदोष ने मुझे भी पागल बना दिया। विधाता ने मेरे जीवन को नये चक्कर में जुतने का संकेत किया। मैंने सोचा कि चलो इसी आश्रम में मैं झाड़ू लगाकर महीने में पन्द्रह रुपये ले लूँगा और श्रीमतीजी सरलता का पाठ पढ़ेंगी। किन्तु यहाँ तो…

झाड़ूवाले की स्त्री—अत्यन्त कठोर अपमान! भयंकर आक्रमण! स्त्री होने के कारण मैं कितना सहती रहूँ। सत्ताईस रुपये के सितार के लिये कहना विष हो गया। विष! (कान छूती है) कानों के लिये फूल नहीं—(हाथों को दिखाकर) इनके लिये सोने की चूड़ियाँ नहीं माँगती। केवल संगीत सीखने के लिये एक सितार माँगने पर इतनी विडम्बना—(रोने लगती है)

सब लोग—(झाड़ूवाले से सक्रोध) यह तुम्हारा घोर अत्याचार है। तुम श्रीमती से क्षमा माँगो। समझे?

झाड़ूवाला—(जैसे डरा हुआ) समझ गया। (अपनी स्त्री से) श्रीमतीजी, मैं तुमसे क्षमा माँगता हूँ। और, कृपाकर अपने लिये, तुम इन लोगों से सितार के मूल्य की भीख माँगो। देखूँ तो ये लोग भी कुछ..........

रसाल—(डाँटकर) तुम अपना कर्त्तव्य नहीं समझते और इतना उत्पात मचा रहे हो!

झाड़ूवाला—जी, मेरा कर्त्तव्य तो इस समय यहाँ झाड़ू लगाने का है; किन्तु आप लोग यहाँ व्याख्यान झाड़ रहे हैं। फिर भला मैं क्या करूँ। अच्छा तो अब आप लोग यहाँ से पधारिये, मैं (झाड़ू देने लगता है! सब रूमाल नाक से लगाते हुए एक स्वर से 'हैं हैं हैं' करने लगते हैं)

आनन्द—चलिये यहाँ से!

झाड़ूवाला—वायुसेवन का समय है। खुली सड़क पर, नदी

के तट, पहाड़ो के नीचे या मैदानों में निकल जाइये। किन्तु—नहीं-नहीं, मैं सदा भूल करता आया हूँ। मुझे तो ऐसी जगहों म रोगी ही मिले हैं जिन्हें वैद्य ने बता दिया हो—मकरध्वज के साथ एक घण्टा वायुसेवन। अच्छा, आप लोग व्याख्यान दीजिये। मैं चलता हूँ; चलिये श्रीमतोजी। उँहूँ आप तो सुनेंगी न! आप ठहरिये। (झाड़ू देना बन्द कर देता है)

आनन्द—मुझे भी आज आश्रम से विदा होना है। आप लोग आज्ञा दोजिये। किन्तु..........नहीं, अब मैं उस विषय पर अधिक कुछ न कहकर केवल इतना ही कह देना चाहता हूँ कि इस परिणाम से—इस स्वच्छन्द प्रेम को बन्धन में डालने के कुफल—से आप लोग परिचित तो हैं; पर उसे टालते रहने का अब समय नहीं है। (वनलता, झाड़ूवाला और उसकी स्त्री को छोड़कर सबका प्रस्थान)

वनलता—(झाड़ूवाले से) क्यों जी, तुम तो पढ़े-लिखे मनुष्य हो, समझदार हो?

झाड़ूवाला—हाँ देवि! किन्तु समझदारी में एक दुर्गुण है। उसपर चाहे अन्य लोग कितने ही अत्याचार कर लें; परन्तु वह नहीं कर सकता—ठीक-ठीक उत्तर भी नहीं देने पाता! (झाड़ू फटकारकर एक वृक्ष से टिका देता है।)

वनलता—सेटो-अफलातून ने कहा है कि मनुष्य-जीवन के लिये संगीत और व्यायाम दोनों ही आवश्यक हैं। हृदय में संगीत

और शरीर में व्यायाम नवजीवन की धारा बहाता रहता है। मनुष्य...

झाड़वाला—और पतंजलि ने कहा है कि जो मनुष्य क्लेश, कर्म और विपाक इत्यादि से अर्थात् रहित-तात्पर्य्य वही-वही कुछ-कुछ सूना-सूना—जो पुरुष मनुष्य हो वही ईश्वर है।

वनलता—इससे क्या ?

झाड़वाला—आपने प्लेटो को पुकारा, मैंने पतञ्जलि को बुलाया। आपने एक प्रमाण कहकर अपनी बातों का समर्थन किया, और मैंने भी एक बड़े आदमी का नाम ले लिया। उन्होंने इन बातों को जिस रूप में समझा था वैसी मेरी और आपकी परि-स्थिति नहीं—समय नहीं, हृदय नहीं। फिर मुझे तो अपनी स्त्री को समझाना है, और आपको अपने पति का हृदय समझना है।

वनलता—(चौंक कर) मुझे समझना है और तुमको समझाना है! कहते क्या हो ?

झाड़वाला—जी—(अपनी स्त्री से) कहो, अब भी तुम समझ सकी हो या नहीं!

झा० की स्त्री—मैंने समझ लिया है कि मुझे सितार की आवश्यकता नहीं, क्योंकि—

झाड़वाला—क्योंकि हमलोग दीवार से घिरे हुए एक बड़े भारी कुंजवन में सुखी और सन्तुष्ट रहना सीखने के लिये बन्दी बने हैं। जब जगत से, आकांक्षा और अभाव के संसार से,

कामना और प्राप्ति के उपायों की क्रीड़ा से विरत होकर एक सुन्दर जीवन, शान्त जीवन बिता देने के लोभ से मैंने झाड़ू लगाना स्वीकार किया है; विद्यालय की परीक्षा और उपाधि को भुला दिया है तब तुम मेरी स्त्री होकर...

झा० की स्त्री —बस-बस, मैं अब तुमसे कुछ न कहूँगी; मेरी भूल थी। अच्छा तो मैं जाती हूँ।

झाड़ूवाला—मैं भी चलता हूँ—(दोनों का प्रस्थान।)

वनलता—यही तो, इसे कहते हैं झगड़ा, और यह कितना सुखद है, एक दूसरे को समझकर जब समझौता करने के लिये, मनाने के लिये, उत्सुक होते हैं तब जैसे स्वर्ग हँसने लगता है—हाँ, इसी भीषण संसार में। मैं पागल हूँ। (सोचती हुई करुण मुखमुद्रा बनाती है, फिर धीरे-धीरे सिसकने लगती है) वेदना होती है। व्यथा कसकती है। प्यार के लिये। प्यार करने के लिये नहीं, प्रेम पाने के लिये। विश्व की इस अमूल्य सम्पत्ति में क्या मेरा अंश नहीं। इन असफलताओं के संकलन में मन को बहलाने के लिये, जीवन-यात्रा में थके हृदय के सन्तोष के लिये कोई अवलम्ब नहीं। मैं प्यार करती हूँ और प्यार करती रहूँ; किन्तु मुझे मानवता के नाते······इसे सहने के लिये मैं कदापि प्रस्तुत नहीं। आह! कितना तिरस्कार है। (वनलता सिर झुका-कर सिसकने लगती है। आनन्द का प्रवेश)

आनन्द—आप कुछ दुखी हो रही हो—क्यों?

वनलता—मान लीजिये कि हाँ मैं दुखी हूँ।

आनन्द—और वह दुःख ऐसा है कि आप रो रही हैं।

वनलता—(तीखेपन से) मुझे यह नहीं मालूम कि कितना दुःख हो तब रोना चाहिये और कैसे दुःख में न रोना चाहिये। आपने इसका श्रेणी-विभाग किया होगा। मुझे तो यही दिखलाई देता है कि सब दुखी हैं, सब विकल हैं, सबको एक-एक घूँट की प्यास बनी है।

आनन्द—किन्तु मैं दुःख का अस्तित्व ही नहीं मानता। मेरे पास तो प्रेम अमूल्य चिन्तामणि है।

वनलता—और मैं उसी के अभाव से दुखी हूँ।

आनन्द—आश्चर्य! आपको प्रेम नहीं मिला। कल्याणी! प्रेम तो……

वनलता—हाँ, आश्चर्य क्यों होता है आपको! संसार में लेना तो सब चाहते हैं, कुछ देना ही तो कठिन काम है। गाली, देने की वस्तुओं में सुलभ है; किन्तु सबको वह भी देना नहीं आता। मैं स्वीकार करती हूँ कि मुझे किसी ने अपना निश्छल प्रेम नहीं दिया; और बड़े दुःख के साथ इस न देने का, संसार का, उपकार मानती हूँ। (आँखों में जल भर लेती है, फिर जैसे अपने को सम्हालती हुई) क्षमा कीजिये, मेरी यह दुर्बलता थी।

आनन्द—नहीं श्रीमती! यही तो जीवन की परम आवश्यकता है। आह! कितने दुःख की बात है कि आपको……

वनलता—तो आप दुःख का अस्तित्व मानने लगे !

आनन्द—(विनम्रता से) अब मैं इस विवाद को न बढ़ाकर इतना मान लेता हूँ कि आपको प्रेम की आवश्यकता है। और आप दुखी हैं। क्या आप मुझे प्यार करने की आज्ञा देंगी ? क्योंकि……

वनलता—'क्योंकि' न लगाइये; फिर प्यार करने में असुविधा होगी। 'क्योंकि' में एक कड़वी दुर्गन्ध है। (रसाल चुपचाप आकर दोनों की बातें सुनता है और समय-समय पर उसकी मुख-मुद्रा में आश्चर्य, क्रोध और विरक्ति के चिन्ह झलकते हैं।)

आनन्द—क्योंकि मैं किसी को प्यार नहीं करता, इसलिये आपसे प्रेम करता हूँ।

वनलता—(सक्रोध) वाग्जाल से क्या तात्पर्य !

आनन्द—मैं—मैं।

वनलता—हाँ, आप ही का, क्या तात्पर्य है ?

आनन्द—मेरा किसी से द्वेष नहीं, इसलिये मैं सबको प्यार कर सकता हूँ। प्रेम करने का अधिकारी हूँ।

वनलता—कदापि नहीं, इसलिये कि मैं आपको प्यार नहीं करती। फिर आपके प्रेम का मेरे लिये क्या मूल्य है ?

आनन्द—तब ! (ओठ चाटने लगता है)।

वनलता—तब यही कि (कुछ सोचती हुई) मैं जिसे प्यार करती हूँ वही—केवल वही व्यक्ति—मुझे प्यार करे, मेरे हृदय

को प्यार करे, मेरे शरीर को—जो मेरे सुन्दर हृदय का आवरण है—सतृष्ण देखे। उस प्यास में तृप्ति न हो, एक-एक घूँट वह पीता चले, मैं भी पिया करूँ। समझे ? इसमें आपकी पोली दार्शनिकता या व्यर्थ के वाक्यों को स्थान नहीं।

आनन्द—(जैसे झेंप मिटाता हुआ) श्रीमती, मैं तो पथिक हूँ और संसार ही पथिक है। सब अपने-अपने पथ पर घसीटे जा रहे हैं, मैं अपने को ही क्यों कहूँ। एक क्षण, एक युग कहिये या एक जीवन कहिये ; है वह एक ही क्षण, कहीं विश्राम किया और फिर चले। वैसा ही निर्मोह प्रेम सम्भव है। सबसे एक-एक घूँट पीते-पिलाते नूतन जीवन का संचार करते चल देना। यही तो मेरा संदेश है।

वनलता—शब्दावली की मधुर प्रवञ्चना से आप छले जा रहे हैं।

आनन्द—क्या मैं भ्रान्त हूँ ?

वनलता—अवश्य ! असंख्य जीवनों की भूल-भुलैया में अपने चिरपरिचित को खोज निकालना और किसी शीतल छाया में बैठकर एक घूँट पीना और पिलाना क्या समझे ! प्रेम का एक घूँट ! बस इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं।

आनन्द—(हताश होकर अन्तिम आक्रमण करता हुआ) तो क्या आपने खोज लिया है—पहचान लिया है ?

वनलता—मैंने तो पहचान लिया है। किन्तु वही, मेरे जीवन-धन अभी नहीं पहचान सके। इसी का मुझे···

(रसाल आकर प्यार से वनलता का हाथ पकड़ता है और आनन्द को गूढ़ दृष्टि से देखता है)

आनन्द—अरे आप यहीं—

रसाल—जी·········(वनलता से) प्रिये! आज तक मैं भ्रान्त था। मैंने आज पहचान लिया। यह कैसी भूलभूलैया थी।

आनन्द—तो मैं चलूँ······ (सिर खुजलाने लगता है)

वनलता—यही तो मेरे प्रियतम!

आनन्द—(अलग खड़ा होकर) यह क्या! यही क्या मेरे सन्देश का, मेरी आकांक्षा का, व्यक्त रूप है! (वनलता और रसाल परस्पर स्निग्ध दृष्टि से देख रहे हैं। आनन्द उस सुन्दरता को देखकर धीरे-धीरे मन में सोचता-सा) असंख्य जीवनों की भूलभुलैया में अपने चि···र···प···रि···चि···त

(रसाल और वनलता दोनों एक दूसरे का हाथ पकड़े, आनन्द की ओर देखकर हँसते हुए, चले जाते हैं; आनन्द उसी तरह चिन्ता में निमग्न अपने-आप कहने लगता है) चिरपरिचित को खोज निकालना! कितनी असम्भव बात! किन्तु········ परन्तु·······बिल्कुल ठीक······मिलते हैं—हाँ, मिल ही जाते हैं, खोजनेवाला चाहिये।

प्रेमलता—(सहसा हाथ में शर्बत लिये प्रवेश करके)

खोजते-खोजते मैं तो थक गई। और शर्वत छलकते-छलकते कितना बचा, इसे आप ही देखिये। आप यहीं बैठे हैं और मैं कहाँ-कहाँ खोज आई।

आनन्द—मुझे आप खोज रही थीं ?

प्रेमलता—हाँ, हाँ, आप ही को। (हँसती है)

आनन्द—(रसाल और वनलता की बात मन-ही-मन स्मरण करता हुआ) सचमुच ! बड़ा आश्चर्य है ! (फिर कुछ सोचकर) अच्छा, क्यों ? (प्रेमलता को गहरी दृष्टि से देखने लगता है)।

प्रेमलता—(जैसे खीझकर) आप ही ने कहा था न ! कि मैं जा रहा हूँ। भोजन तो न करूँगा। हाँ, शर्वत या ठंढाई एक घूँट पी लूँगा। कहा था न ? मीठी नारंगी का शर्वत ले आई हूँ। पी लीजिये एक घूँट !

आनन्द—एक घूँट ! मुझे पिलाने के लिये खोजने का आपने कष्ट उठाया है ! (विमूढ़-सा सोचने लगता है और शर्वत लिये प्रेमलता जैसे कुछ लज्जा का अनुभव करती है)।

प्रेमलता—आप मुझे लज्जित क्यों करते हैं ?

आनन्द—(चौंककर) ऐं ! आपको मैं लज्जित कर रहा हूँ। क्षमा कीजिये। मैं कुछ सोच रहा था।

प्रेमलता—यहीं आज न जाने की बात ! वाह; तब तो अच्छा होगा। ठहरिये—दो-एक दिन !

आनन्द—नहीं प्रेमलता। आह ! क्षमा कीजिये । मुझसे भूल हुई। मुझे इस तरह आपका नाम !

(हँसती हुई वनलता का प्रवेश)

वनलता—कान पकड़िये, बड़ी भूल हुई। क्यों आनन्दजी, यह कौन हैं ? आप बिना समझे-बूझे नाम जपने लगे ।

(प्रेमलता लज्जित-सी सिर झुका लेती है, वनलता फिर अदृश्य हो जाती है। आनन्द प्रेमलता के मधुर मुख पर अनुराग की लाली को सतृष्ण देखने लगता है। और प्रेमलता कभी आनन्द को देखती है, कभी आँखें नीची कर लेती है)।

आनन्द—प्रेमलता ! प्रेमलता ! तुम्हारी स्वच्छ आँखों में तो पहले इसका संकेत भी न था। यह कितना मादक है ?

प्रेमलता—क्या ! मैंने किया क्या ?

आनन्द—मेरा भ्रम मुझे दिखला दिया। मेरे कल्पित संदेश में सत्य का कितना अंश था, उसे अलग झलका दिया ! मैं प्रेम का अर्थ समझ सका हूँ। आज मेरे मस्तिष्क के साथ हृदय का जैसे मेल हो गया है।

वनलता—(फिर हँसते हुए प्रवेश करके) मैं कहती थी न ! खोजते-खोजते चिरपरिचित को पाकर एक घूँट पीना और पिलाना। कैसे पते की कही थी ? हमारे आश्रम की एकमात्र सरला कुमारी प्रेमलता आपसे एक घूँट पीने का अनुरोध कर रही है तब भी······

आनन्द—क्षमा कीजिये श्रीमती ! मैं अपनी मूर्खता पर

विचार कर रहा हूँ! इतनी ममता कहाँ छिपी थी प्रेमलता ? लाओ एक घूँट पी लूँ।

वनलता—प्रेमलता के हाथ से महाशय! आज से यही इस अरुणाचल-आश्रम का नियम होगा उच्छृंखल प्रेम को बाँधने का। चलो प्रेमलता!

(वनलता के संकेत करने पर प्रेमलता सलज्ज अपने हाथों से आनन्द को पिलाती है—आश्रम की अन्य स्त्रियाँ पहुँचकर गाने लगती हैं, रसाल मुकुल और कुंज भी आकर फूल बरसाते हैं।)

मधुर मिलन कुंज में—

जहाँ खो गया जगत का—सारा श्रम-सन्ताप।
सुमन खिल रहे हों जहाँ—सुखद सरल निष्पाप॥

उसी मिलन कुञ्ज में—

तरु लतिका मिलते गले—सकते कभी न छूट।
उसी स्निग्ध छाया तले—पी…लो…न…एक घूँट॥